''वचन परमेश्वर था''

(1:1-13)

हाल ही के *यू. एस. न्यूज़ एण्ड वर्ल्ड रिपोर्ट* के मुख पृष्ठ पर एक रिपोर्ट में पूछा गया कि ''यीशु कौन था?'' इस अंक के अन्दर हमारे ''प्रभु'' के परिचय के लिए कुछ चर्चाएं इस प्रकार से थीं:

> गत दो वर्षों में ही, यीशु को एक जादूगर और चंगाई देने वाले, एक धार्मिक और सामाजिक क्रांतिकारी और एक उग्र देहाती दार्शनिक के रूप में दिखाया गया है। एक लेखक ने तो यह शिक्षा बना ली थी कि यीशु कुमरान नामक स्थान पर उस समुदाय का अगुआ था जिसकी पत्रियां मृत सागर में पाई गई हैं, क्रूस पर चढ़ाए जाने के बाद उसकी मृत्यु हुई थी और दो बार विवाह करके तीन बच्चों का पिता बना था।[1]

न्यूज़वीक मैगज़ीन के मुख पृष्ठ पर भी 1994 में ''यीशु की मृत्यु'' पर इससे मिलती-जुलती कहानी छपी थी। इनमें से एक लेख ''जीज़स सेमिनार'' के नाम से प्रसिद्ध 77 उदारवादी विद्वानों के एक दल पर केन्द्रित था। ये लोग साल में दो बार यीशु के विषय में अपने विचार बताने के लिए इकट्ठे होते हैं कि वह कौन था और उसने वास्तव में क्या किया था। इन लोगों का सबसे विचित्र ढंग यह है कि वे सुसमाचार की पुस्तकों की विशेष आयतों की प्रामाणिकता जानने के लिए वोट डालते हैं। हर व्यक्ति को चार मनके दिए जाते हैं; अपना मत देने के लिए वे केवल मनकों का प्रयोग करते हैं। लाल मनकों का अर्थ होता है कि वे मानते हैं कि यीशु ने निश्चय ही वे बातें कहीं या कीं जो बाइबल में लिखी गई हैं। गुलाबी मनकों का अर्थ होता है कि उन्हें लगता है कि यीशु ने बाइबल में लिखी बातों से मिलता-जुलता कुछ कहा या किया था। भूरे मनके यीशु की बातों या कामों के प्रति बाइबल की बातों पर उनके संदेह को दर्शाते हैं और काले मनके यह दर्शाते हैं कि उन्हें यकीन है कि जैसा बाइबल में बताया गया है वैसा यीशु ने कभी सोचा या किया ही नहीं। ''जीज़स सेमिनार'' में नीचे दिए अधिकतर निष्कर्ष चौंकाने वाले हैं और, मेरा तो मानना है कि ये परमेश्वर की निन्दा हैं!

> इस ''ऐतिहासिक'' यीशु ने कोई आश्चर्यकर्म नहीं किया, पर उसके पास स्वीकार करने तथा प्रेम से भावनात्मक रोगों से चंगाई देने, छुटकारा देने का दान अवश्य था। उसने न्याय के किसी दिन नहीं बल्कि यहीं पर और इसी समय परमेश्वर का

पूर्णतया समतावादी राज्य लाना चाहा था। वह लोगों को मन्दिर या राज्य के पुरोहित तन्त्र के बिना सीधे ही परमेश्वर का अनुभव करवाना चाहता था। यरूशलेम में फसह के दौरान उसके द्वारा गड़बड़ी करवाने पर अधिकारियों ने उसे मृत्यु दण्ड दे दिया था। यीशु पुराने और नये अनुयायियों के मनों में तो बसा हुआ था, परन्तु शारीरिक रूप में वह कभी मुर्दों में से जीवित नहीं हुआ था। क्रूस से उतार लिए जाने के बाद, उसकी मृत देह को सम्भवत: एक खाली कब्र में गाड़ दिया गया था और उसे कुत्तों ने खा लिया होगा।[2]

यीशु की पहचान आज न केवल विद्वानों में ही बल्कि दुनिया भर में, चाय की दुकानों और गलियों में भी चर्चा का विषय है! कुछ लोग उसे "एक भला मनुष्य" मानते हैं। अन्य यह मानते हैं कि वह "सबसे निराला गुरु" था। ऐसे भी लोग हैं जो यह दावा करते हैं कि वह "संसार का सबसे बुद्धिमान व्यक्ति" था। संसार के अधिकतर लोग इस बारे में कुछ न कुछ विचार अवश्य रखते हैं कि यह यीशु नासरी वास्तव में कौन था।

फिर, आपको और मुझे इस सारी चर्चा से क्या मिलेगा? मैं ऊपर वर्णित समाचार पत्रिकाओं में व्यक्त निष्कर्षों से तो पूरी तरह असहमत हूं और यीशु के बारे में लोगों में व्याप्त अधिकतर विचारों से बहुत चिन्तित भी हूं, परन्तु यह बात मुझे आकर्षित करती है कि पृथ्वी पर उसके आने के लगभग दो हज़ार वर्ष बाद, लोग यीशु के बारे में अभी भी बातें कर रहे हैं कि "यह मनुष्य कौन था?" हमारे लिए, अच्छी बात यह है कि यूहन्ना इसी प्रश्न का एक स्पष्ट उत्तर देकर सुसमाचार की अपनी इस पुस्तक का आरम्भ करता है!

वचन (1:1-5)

"आदि में वचन था, और वचन परमेश्वर के साथ था, और वचन परमेश्वर था" (1:1)। यूहन्ना ने यीशु के जन्म तथा बचपन के बारे में कुछ नहीं कहा। उसने "आदि में" से आरम्भ किया। पुराने नियम को मानने वाले पाठकों के लिए, ये शब्द उत्पत्ति 1:1 के स्वर की तरह हैं। यीशु को पहचानने और उसकी व्याख्या करने के लिए, यूहन्ना को पीछे अर्थात "आदि" में जाना पड़ा। यीशु संसार के अस्तित्व में आने से पहले था।

यीशु का परिचय करवाने के लिए "वचन" का इस्तेमाल किया गया है। यद्यपि 14 से 18 आयतों तक यूहन्ना यह नहीं कहता कि यीशु ही वह "वचन" है, परन्तु उसका वर्णन करने के लिए आयत 1 में इसी अभिव्यक्ति का इस्तेमाल किया गया है। "वचन" जो कि यूनानी भाषा में *लोगोस* है, यहूदी और यूनानी पाठकों के लिए अलग अर्थ रखता था। यहूदी लोग "वचन" को परमेश्वर की सक्रिय शक्ति के रूप में मानते थे जिसने संसार की रचना की और उसे स्थिर रखता है। उत्पत्ति 1 व 2 अध्याय तथा यशायाह 55:3,11 में "वचन" को इसी अर्थ में दिखाया गया है। यहूदियों को याद था कि "परमेश्वर ने कहा, उजियाला हो: तो उजियाला हो गया" था (उत्पत्ति 1:3)। सचमुच परमेश्वर के वचन में सामर्थ है!

अन्यजातियों ने "वचन" शब्द को सुनकर इसे उस अर्थ में समझा जिसका इस्तेमाल यूनानी दार्शनिक किया करते थे। उन्होंने इसे अव्यैक्तिक सामर्थ के रूप में देखा जिसने सृष्टि

को तरतीब तथा अर्थ दिया था। जैसे कि एक टीकाकार ने लिखा है, बहुत से लोग ''वचन'' को वैसे ही समझते थे जैसे आज हम में से बहुत से लोग ''न्यूक्लियर फ़िज़न'' अर्थात आणविक विखण्डन की समझ रखते हैं।[3] न्यूक्लियर फ़िज़न को विस्तार से तो नहीं समझा पाएंगे, परन्तु हमें इतना ज्ञान अवश्य है कि हम इसका आदर करें, इसका भय मानें तथा इसके बारे में बात कर सकें।

यीशु का परिचय करवाने के लिए यूहन्ना ''वचन'' का इस्तेमाल करके यहूदियों और अन्यजातियों के बीच चौंकाने वाले दावे कर रहा था। यह यीशु जिसके बारे में वह लिख रहा था परमेश्वर की इच्छा की एक अभिव्यक्ति, सृष्टि के पीछे सृजनात्मक शक्ति तथा वह सामर्थ था जो जीवन को एक करके रखता है। कुलुस्सियों 1:15-17 कहता है:

> वह तो अदृश्य परमेश्वर का प्रतिरूप और सारी सृष्टि में पहिलौठा है। क्योंकि उसी में सारी वस्तुओं की सृष्टि हुई, स्वर्ग की हों अथवा पृथ्वी की, देखी या अनदेखी, क्या सिंहासन, क्या प्रभुताएं, क्या प्रधानताएं, क्या अधिकार, सारी वस्तुएं उसी के द्वारा और उसी के लिए सृजी गई हैं। और वही सब वस्तुओं में प्रथम है, और सब वस्तुएं उसी में स्थिर रहती हैं।

''वचन'' का उल्लेख सुनकर लोग चाहे जो भी सोचते रहे हों, परन्तु वे यह समझ गए थे कि यूहन्ना सुसमाचार की अपनी पुस्तक का आरम्भ इस प्रकार करके उसके विषय में पक्का दावा कर रहा था जिसके बारे में वह बता रहा था। फुर्ती से आगे बढ़ते हुए, यूहन्ना ने घोषणा कर दी कि ''वचन परमेश्वर के साथ था,'' ''वचन परमेश्वर था,'' ''सब कुछ उसी के द्वारा उत्पन्न हुआ,'' और ''उसमें जीवन था'' (1:1-4)। यूहन्ना लोगों को यह समझाने का प्रयास नहीं कर रहा था कि यीशु बहुत बड़ा गुरु या कोई बुद्धिमान व्यक्ति था बल्कि वह तो यह घोषणा कर रहा था कि यीशु परमेश्वर है अर्थात उसमें परमेश्वर का स्वभाव है!

जीवन की ज्योति (1:6-8)

पहली पांच आयतों में चौंकाने वाले दावे करने के बाद, यूहन्ना ने अगली तीन आयतें यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले पर चर्चा करने के लिए समर्पित कर दीं। हम में से अधिकतर लोग यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले को एलिय्याह या यिर्मयाह की तरह एक महान भविष्यवक्ता मानते होंगे, परन्तु पहली सदी के अधिकतर लोग उसे उनसे भी बड़ा मानते थे। कइयों ने तो उसे मसीह का स्थान देने की भूल कर दी थी! यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला इतना प्रसिद्ध था और इतनी सामर्थ से बोलता था कि कभी-कभी तो उसे लोगों को समझाना पड़ता था कि, ''मैं मसीह नहीं हूं'' (1:20)।

ऐसी उलझन के कारण, सुसमाचार के इस लेखक ने स्पष्ट किया कि यूहन्ना बपतिस्मा देने वाला स्वयं यीशु नहीं बल्कि यीशु का एक महत्वपूर्ण गवाह था: ''[यूहन्ना] गवाही देने आया, कि ज्योति की गवाही दे, ताकि सब उसके द्वारा विश्वास लाएं। वह आप तो वह ज्योति न था, परन्तु उस ज्योति की गवाही देने के लिए आया था'' (1:7, 8)। लेखक यूहन्ना

बपतिस्मा देने वाले के विषय में यह कहकर, घोषणा कर रहा था कि यूहन्ना बपतिस्मा देने वाले जितना महान भी यीशु के बराबर नहीं बन सकता है! ''वचन'' केवल यीशु ही है।

ठुकराया हुआ (1:9-11)

यदि यीशु सचमुच ईश्वरीय वचन है तो उसे इतने लोगों ने ठुकराया क्यों? यूहन्ना ने इस दुखद दृश्य का वर्णन करते हुए स्पष्ट लिखा, ''वह जगत में था, और जगत उसके द्वारा उत्पन्न हुआ, और जगत ने उसे नहीं पहिचाना। वह अपने घर आया और उसके अपनों ने उसे ग्रहण नहीं किया'' (1:10, 11)। संसार के सृजनहार को उसी संसार ने ठुकरा दिया जिसे उसने बनाया था! यूहन्ना ने संसार द्वारा यीशु को ठुकराए जाने उसके विषय में किए अपने पहले दावे को गलत नहीं माना था। यूहन्ना ने दावा किया कि यीशु का ठुकराया जाना उसकी महानता के बारे में बताने से अधिक संसार की ही स्थिति का पता देता था। यीशु तो अंधे संसार द्वारा अपनी पीठ उसकी ओर करने के बावजूद भी ''सच्ची ज्योति'' (1:9) ही बना रहा!

यीशु का उस संसार द्वारा जिसे उसने बनाया था, ठुकराया जाना उस व्यक्ति के उदाहरण की तरह है जो दिनभर कठिन परिश्रम करने के बाद अपने घर को लौटता है:

> दिनभर के काम–काज से थका हुआ, वह काम पूरा करके प्रसन्न है, और अपने घर में अपने परिवार से मिलने की प्रतीक्षा कर रहा है। घर के पास पहुंचने पर उसके कदम तेज़ी से चलने लगते हैं। उसे लगता है कि कुंजी उसकी जेब में है, परन्तु वह टटोलकर देखता है कि वह उसकी जेब में नहीं है, कहीं इधर उधर रखी गई है। परन्तु इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ता; उसके परिवार के लोग तो घर में ही हैं। सो वह सामने के दरवाज़े से जाकर खटखटाता है। कोई नहीं आता। कोई उसके लिए दरवाज़ा नहीं खोलता। परिवार के लोग घर में ही हैं और उन्हें मालूम है कि वह द्वार पर खड़ा है। कोई खिड़की से थोड़ा सा पर्दा खींचता है और वे आंखें जिन्हें वह बड़ी अच्छी तरह से पहचानता है बाहर झांककर उसे देखती हैं। लेकिन वे उसे वहीं खड़ा रहने देते हैं।[4]

यह बात समझ से बाहर है कि परिवार के मुखिया की उपेक्षा की जाए और उन लोगों द्वारा उसे ठुकराया जाए जिनसे वह प्रेम करता है और उनके खाने पीने का प्रबन्ध करता है। परन्तु जब यीशु इस संसार में आया तो उसके साथ ऐसा ही हुआ था।

मनुष्य का उद्धार करने वाला (1:12, 13)

यूहन्ना द्वारा यीशु का नाटकीय परिचय ठुकराए जाने की इस कड़वी टिप्पणी पर ही समाप्त नहीं हो जाता है। इसके विपरीत, यह उद्धार की आशापूर्ण टिप्पणी के साथ पूरा होता है। सबने यीशु से मुंह नहीं फेरा था। कुछ लोगों ने, जिनमें यूहन्ना के पाठक भी शामिल थे, नासरत से आए इस गुरु के पीछे चलना चुन लिया था। यूहन्ना ने घोषणा की, ''परन्तु

जितनों ने उसे ग्रहण किया, उस ने उन्हें परमेश्वर के संतान होने का अधिकार दिया, अर्थात उन्हें जो उसके नाम पर विश्वास रखते हैं'' (1:12)। यूहन्ना रचित सुसमाचार इसीलिए लिखा गया था। कुछ लोग सुनेंगे और आकर विश्वास करेंगे (20:31) और विश्वास करके यीशु के नाम में जीवन पाएंगे!

सारांश

क्या इस सारी बातचीत में आदि, ''वचन'' की बात है और दूसरे सप्ताह काम के लिए जाने पर सोमवार को विश्वास के बारे में हमारे जीवन पर कोई फर्क पड़ता है? निश्चय ही इससे फर्क पड़ेगा! इससे संसार में फर्क पड़ता है! यीशु न तो केवल मनुष्य ही और न वह कोई महान गुरु, बुद्धिमान भविष्यवक्ता या ज़बर्दस्त नेता भी नहीं है। वह तो परमेश्वर है! यदि हम उस पर विश्वास करना चुनते हैं, तो शीघ्र ही हम पाएंगे कि संसार की किसी भी वस्तु का महत्व यीशु जितना नहीं है और संसार की किसी भी वस्तु की बातों को जानने का महत्व उसे जानने से बढ़कर नहीं है।

प्रसिद्ध संस्कृति में मिल चुका यीशु नहीं, बल्कि यूहन्ना रचित सुसमाचार वाला यीशु हमें उद्धार के लिए अपने पास आने का निमन्त्रण देता है। यदि वह केवल मनुष्य होता, तो उसके निमन्त्रण का कोई महत्व नहीं होना था। यदि वह कोई महान व्यक्ति होता तो भी कोई बड़ी बात नहीं थी, उसका निमन्त्रण तब भी ऐसा ही होता जिसकी उपेक्षा की जा सकती थी। लेकिन वह तो परमेश्वर का ईश्वरीय वचन है, क्या हम में से किसी में उसके निमन्त्रण की उपेक्षा करने का साहस है?

> परन्तु जितनों ने उसे ग्रहण किया, उसने उन्हें परमेश्वर के संतान होने का अधिकार दिया, अर्थात उन्हें जो उसके नाम पर विश्वास रखते हैं। वे न तो लहू से, न शरीर की इच्छा से, न मनुष्य की इच्छा से परन्तु परमेश्वर से उत्पन्न हुए हैं (1:12, 13)।

पाद टिप्पणियां

[1]जेफरी एल. शेलर, ''हू वाज़ जीज़स?'' *यू. एस. न्यूज़ एण्ड वर्ल्ड रिपोर्ट* (20 दिसम्बर 1993): 62. [2]रस्सल वॉटसन, ''ए लेस्सर चाइल्ड ऑफ गॉड,'' *न्यूज़वीक* (4 अप्रैल 94): 53. [3]लियोन मौरिस, *द गॉस्पल अकॉर्डिंग टू जॉन* (ग्रैन्ड रेपिड्स, मिशी.: Wm. B. ईर्डमैन्स पब्लिशिंग कं., 1971), 116. [4]लियोन मौरिस, *एक्सपोज़िटरी रिफ्लेक्शन्ज़ ऑफ़ द गॉस्पल ऑफ़ जॉन* (ग्रैन्ड रेपिड्स, मिशी.: बेकर बुक हाउस, 1986), 11.